Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 68, December 2020

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 68, दिसंबर 2020

समकालीन हिंदी कविता का वर्तमान परिदृश्य

शुभम सिंह
पीएच. डी. (शोधार्थी, हिंदी विभाग)
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय,
धर्मशाला , काँगड़ा, 176215
मो. 7017981925
ईमेल-
singhshubham876@gmail.com

सारांश

समकालीन कविता में सामाजिक बोध को समय की माँगों के अनुरूप उभरते हुए देखा जा सकता है जिसने मनुष्य को उसके दायित्वों के प्रति बोध कराया। समकालीन कविता की प्रमुख विशेषता जनपक्षधरता रही है। मानव जीवन को उसकी सम्पूर्णता में स्वीकार करने और उसके जीवन की समस्याओं को गहरे भावबोध के साथ स्पष्ट करना समकालीन कविता की प्रमुख पहचान रही है। अपने समय एवं समाज से संघर्ष करना और फिर उस पर प्रश्न खड़े करना समकालीन कविता को मानव जीवन के प्रति सकारात्मक बनाता है। आम जन जीवन की पीड़ा, लोक की संस्कृति तथा मानव के चरित्र को विभिन्न रूपों में देखने का कार्य समकालीन कविता ने किया है। चाहे सत्ता को कठघरे में खड़ा करने की बात हो या मानव अस्मिता का प्रश्न हो, स्त्री, दलित और आदिवासी सभी वर्गों एवं पक्षों की अस्मिता का प्रश्न हो, समकालीन कविता ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जीवन व जगत के हर पक्ष को देखने की यह विविधता ही समकालीन कविता को जीवंत बनाती है।

बीज शब्द- *परम्परा, संस्कृति, संघर्ष, लोकतंत्र, स्वतंत्रता, जनपक्षधरता, अस्मिता, अधिकार, आम आदमी, हांसिये, चेतना, अभिव्यक्ति।*

भूमिका

समकालीन कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस की भाषागत संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है। कविता जहाँ समाज-सापेक्ष रूप में रची जाती है वहीं वह सामाजिक, राजनीतिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया होने के साथ-साथ सौंदर्यबोधी होती है। समकालीन कविता जहाँ अपने समय के मुख्य अन्तेर्विरोधों से संघर्ष करते हुए दिखाई पड़ती है वहीं उसमें समाज के प्राथमिकताओं को अपने जीवनानुभवों से पहचान कर लड़ने का संकल्प भी है। समकालीन कविता में जो हो रहा है (विकमिंग) का सीधा खुलासा है क्योंकि उसमें जीवन से संघर्ष करते, हारते, लड़ते, निराश होते तथा ठोकरे खाकर सोचते वास्तविक आदमी का संघर्ष है। समकालीन कविता में युगीन अभिव्यक्ति के कारण ही उसमें वास्तविक जीवन का बोध निरंतर पुष्ट हो रहा है। समकालीन हिंदी कविता अपने समय से सीधे जुड़ी है। 'समकाल' से तात्पर्य समकालीन राजनीति, समाज और जीवन से जुड़ना है। वर्तमान समाज से जुड़ने और जोड़ने का उपकर्म ही समकालीन कविता का मूल ध्येय है।

वर्तमान समय बदल रहा है और नयी-नयी चुनौतियाँ हमारे समक्ष आ रही हैं ऐसे में कवि कर्म और कविता दोनों का दायित्व बढ़ जाता है। कवियों की एक लंबी परम्परा जो वर्षों से साहित्य और समाज को एक दिशा दिखाने का काम कर रही रही थी उसका दीप एक के बाद एक लगातार बुझ रहा है। कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, कैलाश वाजपेयी सरीखे कवि जो निरंतर अपने साहित्य से जीवन को गति एवं दिशा दे रहे थे अब हमारे

समक्ष उनकी समृद्ध विरासत है और इस विरासत को संजोकर तथा उससे प्रेरणा लेकर ही हम इस कठिन समय में आने वाली बाधाओं से आगामी पीढ़ी के लिए नवीन मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। वर्तमान समाज की विसंगति और संबंधों में बढ़ रहे तनाव ने मानव जीवन को एक ऐसे साँचे में ढाल दिया है जो अपनी प्रकृति में काफी दूर तक परस्पर विरोधी सृष्टि को रूपायित करती है। अज्ञेय इस समकालीन तनाव को बहुत पहले ही समझ जाते है। वे अपनी 'सागर मुद्रा-7' शीर्षक कविता के माध्यम से कहते हैं।

न कहीं अंत है

न कोई समाधान है

न जीत है न हार है

केवल परस्परता के तनावों का

एक अविराम व्यापार है

और इसमें

हमें एक भव्यता का बोध है।[1]

समकालीन कविता में भव्यता का यह बोध ही तत्कालीन समाज के प्रति प्रखर और आगामी पीढ़ी के प्रति गतिशील रहने का आवाहन करता है।

हिंदी कविता के समकालीन परिदृश्य को दो दृष्टियों से अवलोकन कर सकते हैं। एक तो हिंदी कविता की गुणवत्ता या कहें दशा-दिशा की दृष्टि से और दूसरे उसके परिवेश की दृष्टी से। समकालीन हिंदी कविता अपने परिवेश में अत्यंत व्यापक होने के कारण उसमें भाव बोध और वस्तु बोध का गहरा स्तर देखने को मिलता है। समकालीन कविता का मुख्य स्वर असुरक्षित, असहाय, कमजोर और अकेला किन्तु निरंतर जूझने वाला मनुष्य है। यह संघर्षशील आम आदमी ही समकालीन कविता का वाहक है। समकालीन कविता अपने समाज के प्रति प्रतिबद्ध है। समकालीन कविता ने न केवल जीवन के विविध पहलुओं को उभारा है बल्कि समाज में बढती आशंकाओं, विडम्बनाओं, विद्रूपताओं को गहरे परिवर्तन बोध से जोड़कर देखा है। अरुण कमल जब 'नए इलाके कविता' में कहते हैं-

इन नए बसते इलाकों में

जहाँ रोज बन रहें हैं नए –नए मकान

मैं अकसर रास्ता भूल जाता हूँ[2]

ये जो हर रोज परिवर्तन हो रहा है उससे न केवल हम अपनी संस्कृति को भूल रहे हैं बल्कि अपनी जमीन से भी कट रहे हैं। अरुण कमल उन कवियों में हैं जो धूमिल हो चुकी परम्परा की ओर लौटने का आवाहन करते हैं। अरुण कमल अपनी कविताओं के लिए आवश्यक तत्त्व परम्पराओं से लेते हैं और इससे भी न मिला तो लोक

जीवन से सामग्री इकट्ठा करते हैं। अरुण कमल की कविता के बारे राजेश जोशी कहते हैं " अरुण की कविता की एक बहुत बड़ी विशेषता मुझे लगता है यह है कि उसमे समय की कई गतियाँ एक साथ मौजूद हैं।"[3] भाव, संवेदना और अभिव्यक्ति के स्तर पर अरुण कमल के अतरिक्त जिन कवियों ने समकालीन कविता को प्रभावित किया है उनमें अशोक वाजपेयी, राजेश जोशी, अलोक धन्वा, देवी प्रसाद मिश्र, कुमार अंबुज, अनामिका, कात्यायनी, बद्रीनारायण, बोधिसत्व, पंकज चतुर्वेदी, अनुज लुगुन आदि तमाम ऐसे समर्थ कवि हैं जो हिंदी कविता को हर स्तर पर प्रभावित कर रहे हैं।

समकालीन कविता किसी वाद से मुक्त नजर आती है उसमें कई विचारधाराओं, सिद्धांतों तथा जीवन के पहलुओं का समन्वय देखने को मिलता है। आलोक धन्वा अपनी कविताओं में जितनी स्वच्छंदता से प्रेम को दर्शाते हैं उतनी ही बेचैनी के साथ लोक क्रांति को भी। वे पूरी ताकत के साथ सत्ता और व्यवस्था पर प्रश्न खड़ा करते हैं।

कैसे देखते हो तुम इस श्रम को?

भारतीय समुद्र में जो तेल का कुआं खोदा जा रहा है

क्या वह मेरी जिंदगी से बाहर है?

क्या वह सिर्फ एक सरकारी काम है [4]

आलोक धन्वा के लिए सामाजिक अव्यवस्था सिर्फ खबर या सनसनी नहीं है। वह दमन के स्त्रोत को तुरंत लक्ष्य करते हैं। परमानन्द श्रीवास्तव कहते हैं, 'आलोक धन्वा अगर स्मृति और करुणा के गहनता के कवि हैं तो क्रांतिकारी आशयों के साथ।'[5]

समकालीन कविता का मूल स्वर हिंसा और युद्ध विरोधी है। समकालीन कविता इसी स्वर को लेकर लोकतंत्र के स्तम्भ को मजबूती प्रदान करती है। कुछ समय से जिस प्रकार से असहिष्णुता और मानव जीवन के अस्तित्त्व को लेकर लोगों में खतरे का आभास हुआ है यह एक तरह से लोगों में लोकतंत्र के प्रति अविश्वास पैदा करता है। 21वीं सदी में जिस तरह से साहित्य, मीडिया और पत्रकारिता पर शासन सत्ता तथा पूंजीपतियों ने अपना पहरा डाला है उससे आम आदमी की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में कहीं ना कहीं बाधा पहुँची है। दाभोलकर, पंसारे, एम. एम. कलबुर्गी जैसे लेखकों की हत्या ने अभिव्यक्ति की आजादी के प्रति आशंका पैदा कर दी। राजेश जोशी ऐसे सत्ताधारी ताकतों के विरुद्ध खड़े होते हैं-

मैं बोलना चाहता हूँ

वो मेरी जुबान पकड़ लेता है इस तरह मत बोलो

मैं ऊँगली दिखता हूँ उधर देखो

उधर गलत हो रहा है वह रोकता है ऊँगली मत दिखाओ

यह खतरनाक है।[6]

राजेश जोशी की इस कविता में अभिव्यक्ति की आजादी में निहित तत्त्वों- कभी जनपक्षधरता, कभी अन्याय का विरोध, कभी क्रूर अमानवीय ताकतों के विरुद्ध लड़ाई की तैयारी, तो कभी कमजोर पक्ष के प्रति साहसपूर्ण संघर्ष आदि को देखा जा सकता है।

समकालीन कवियों ने अपने लेखन में उन प्रश्नों को महत्त्व दिया जो सामाजिक दृष्टीकोण से मानव हितोपयोगी हो। यही कारण है कि समकालीन कविता का काल विमर्श मूलक है। और समकालीन कविता अस्मिता और अधिकार मूलक प्रश्नों पर बहस करते हुए दिखाई पड़ती है। स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श आदि विमर्शों ने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए न केवल एक आधार दिया बल्कि उनकी चेतना को मुखर किया है। जिससे वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो सके। समाज का ऐसा वर्ग जो सदियों से अपने अधिकारों को लेकर पीड़ा और यातना की आग में जल रहा था। उस आग को समकालीन कविता ने एक ज्योति दी है जिससे उनकी अन्तःचेतना प्रकाशित हो सके। अनामिका अपनी कविता में पूरे समाज के परिवर्तन या अनुवाद की मांग करती है वे जब अपनी कविता 'अनुवाद' में कहती हैं-

दरअसल इस पूरे घर का

किसी दूसरी भाषा में

अनुवाद चाहती हूँ मैं

पर वह भाषा मुझे मिलेगी कहाँ ?[7]

यह अनुवाद या परिवर्तन एक तरह से सामाजिक वर्जनाओं, बन्धनों और पारंपरिक मान्यताओं से मुक्ति का अनुवाद है जो उनके ठहराव के प्रति जिम्मेदार है। वह अपने लिए विस्तार, जगह बनाना चाहती है। स्त्री की स्वतंत्रता को लेकर अत्यंत सजग व परतंत्रता के लिए जिम्मेदार कारणों पर बात कहते हुए अनामिका कहती हैं, 'नारी आन्दोलन की सार्थकता इसमें है कि वहाँ-वहाँ ऊँगली रखे, जहाँ-जहाँ मानदंड दोहरे हैं। विरूपण, विक्षेपण, विलोपन के तिहरे षड्यन्त्र स्त्री के खिलाफ लगातार कारगर हैं जिनसे निस्तार मिलना ही चाहिए।'[8] अनामिका की ही तरह कात्यायनी, सविता सिंह, गगन गिल, नीलेश रघुवंशी आदि कवयित्रियों ने स्त्री सशक्तिकरण की मांग को उठाया है। समकालीन कविता में यह वह समय था जब स्वानुभूति, सहजानुभूति, सहानुभूति के भाव को साहित्य का मापदंड बनाया गया, अनुभूति की प्रमाणिकता स्त्री साहित्य के साथ -साथ दलित साहित्य का भी केंद्र बिंदु है।

दलित चेतना या दलित विमर्श समकालीन हिंदी कविता का केंद्रीय विषय है अगर केंद्रीय विषय ना भी माना जाये तो भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषय तो है ही। दलित कविता ने हिंदी कविता को जहाँ एक नए साँचे में ढाला है, वहीं उसे नए मुहावरे और अर्थ प्रदान कर उसे जीवंत भी बनाया है। दलित कविता समाज के सबसे निचले और पिछड़े वर्गों तक पहुँची है तथा उनकी अस्मिता से परिचित कराकर उनमें परिवर्तनकामी चेतना का संचार किया है। यही वह बिंदु है जिसे किसी भी समाज की चेतना में बदलाव का प्रस्थान बिंदु कहा जा सकता है। साहित्य संवेदना का क्षेत्र है। सुमित्रानंदन पन्त जब कविता की संवेदना की ओर संकेत करते हैं 'वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान' तो यह आह ही दलित कविता का मूल भाव है। समाज का एक ऐसा वर्ग जो सदियों से हांसिये पर रहा है जिसके पास गाँव में ऐसा कुछ नहीं जिसे वह अपना कह सके जिस पर गर्व कर सके। सड़के, गलियाँ, शमशान कहीं भी उसको अपनापन महसूस या दिखाई नहीं पड़ता है। डॉ. सुखबीर सिंह ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'बयान बाहर' में गाँवों में दलितों की स्थिति का चित्रण करते हैं-

ओ मेरे गाँव! तेरी जमीन पर

घुटी- घुटी सांसों के साथ

पलना पड़ता है अलग- अलग

लड़खड़ाते क़दमों से

चलना पड़ता है अलग-अलग

मरने के बाद भी

जलना पड़ता है अलग-अलग। [9]

यह केवल गाँवों की स्थिति नहीं अपितु शहरों और महानगरों की बस्तियों में भी दलित पृथक समाज के रूप में रहता है। आजीविका से लेकर अपनी प्रत्येक जरुरत के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता 'ठाकुर का कुआं' में दलित जीवन की त्रासदी को चित्रित करते हैं।

चूल्हा मिट्टी का / मिट्टी तालाब की / तालाब ठाकुर का

कुँआ ठाकुर का /पानी ठाकुर का / खेत-खलिहान ठाकुर के

गली-मुहल्ले ठाकुर के / फिर अपना क्या ? / गाँव ? शहर ? देश ? [10]

इसी तरह का प्रश्न सूरजपाल चौहान ने अपनी कविता 'मेरा गाँव' नामक कविता में उठाया है। वे कहते हैं ' मेरा गाँव कैसा गाँव, ना कहीं ठौर ना कहीं ठाँव' दलित कविता का स्पष्ट मत है हमें आदमी चाहिए और आदमियत चाहिए। वह अन्धकार से सवेरे की ओर आने के लिए किसी से याचना नहीं करता अपितु 'अप्प दीपो भव' की चेतना, प्रेरणा और उर्जा को ग्रहण कर स्वयं का मार्ग प्रशस्त करता है। दलित कविता की इस चेतना और आशावाद ने समकालीन हिंदी कविता को एक नयी दृष्टि दी है।

समकालीन कविता में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श की ही भांति आदिवासी विमर्श भी अपनी अस्मिता और अधिकारों को लेकर संघर्ष कर रहा है। आदिवासी चिंतन आदिवासियों का तथाकथित सभ्य समाज के प्रति मुखर विरोध का स्वर है जिसके मूल में विसंगतियों के प्रति प्रतिरोध का भाव है। आदिवासी कविता का मूल स्वर जल, जंगल, जमीन की पीड़ा है जिस पर लगातार अत्याचार, अपमान, शोषण हो रहा है। वे लगातार अपनी परम्परा, संस्कृति, भाषा, बोली, लिपि को बचाने की जद्दोजहद कर रहे हैं। अनुज लुगुन आदिवासी समस्याओं पर बड़ी तटस्थता और यथार्थता के साथ उनका पक्ष रखते हैं। अनुज लुगुन की कविता 'अघोषित उलगुलान' आदिवासी संघर्ष का आख्यान है। वे कहते हैं-

कोई नही बोलता इनके हालात पर

कोई नहीं बोलता जंगलों के कटने पर

पहाड़ों के टूटने पर नदियों के सूखने पर

ट्रेन की पटरी पर पड़ी

तुरिया की लावारिस लाश पर

कोई कुछ नहीं बोलता [11]

सत्ताधारी ताकतों की यह चुप्पी आदिवासी पीड़ा को दर्शाती है जहाँ न तो उनके अधिकार की बात होती है न ही उनके विकास की, सिर्फ झूठे वादों और आरक्षण के नाम पर उनके साथ विश्वासघात होता है। ऐसे में आदिवासी संघर्ष की पीड़ा क्षेत्रीय न होकर वैश्विक पीड़ा बन जाती है। आज के समय में जब एक वर्ग अपनी अस्मिता, अपनी संस्कृति, रोटी को बचाने के लिए संघर्षरत है वहीं दूसरी ओर शोषक वर्ग निरंतर ऐश्वर्य में जी रहा है, उस समाज का भविष्य क्या होगा ? यह सोचना भी हमें आतंकित करता है।

आदिवासियों द्वारा देश की रक्षा में किये बलिदान व देश के विकास में किये योगदान के दर्ज न होने पर महादेव टोप्पो चिंता व्यक्त करते हैं। शास्त्रों, धर्मग्रंथों द्वारा आदिवासियों की अवमानना पर वे आदिवासियों को सतर्क करते हैं कि इससे पहले तुम्हारी तुलना किसी बन्दर, भालू या अन्य किसी जानवर से न कर दें, तुम्हें अपने ग्रन्थ स्वयं रचने होंगे।

इससे पहले कि वे पुनः तुम्हारा

अपने ग्रंथों में

बंदर- भालू या अन्य किसी जानवर के रूप में करें वर्णन

तुम्हें अपने आदमी की खोजनी होगी परिभाषा

रचने होंगे स्वयं ग्रंथ।[12]

आदिवासी चेतना को एक नयी दृष्टी से रचने और गढ़ने का काम समकालीन कविता में व्यापक रूप में हो रहा है जिनमें रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, जसिंता केरकेट्टा सरीखे महत्त्वपूर्ण कवि हैं। हिंदी कविता का लोकतंत्र दलितों, स्त्रियों आदि के साथ-साथ आदिवासी कवियों को शामिल करने से ही बनता है यह विमर्श नया है लेकिन इसकी जमीन बहुत मजबूत है।

आज की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में यदि आम आदमी के अधिकारों का हनन होता है तो वह शोषण के विरुद्ध आवाज कहाँ तक उठा पाता है? कवि कुमार विकल की कविता 'एक छोटी-सी लडाई' सर्वहारा के जीवन संग्राम को अभिव्यक्त करती है – 'मुझे लड़नी है एक छोटी-सी लड़ाई/ एक झूठी लड़ाई में मैं इतना थक गया हूँ कि किसी बड़ी लड़ाई के काबिल नहीं रहा।'[13] आम आदमी की यह लड़ाई पूंजीवादी ताकतों का सामना करते हुए स्वयं को मजबूत करने का सजग प्रयास है। सभ्यता का विकास निरंतर हो रहा है पर आम आदमी के लिए इसमें कहीं भी स्थान नहीं है। पूंजीवादी सभ्यता में ऐसे अनुपयोगी पुर्जों की भला क्या पहचान हो सकती है?

निष्कर्ष समकालीन हिंदी कविता निरंतर गतिशील है। तत्कालीन समय में जब देश में लोकतंत्र और उसकी राजनीति को लेकर बहस चल रही है ऐसे में समकालीन कविता पूर्ण आवेग के साथ रूप, संवेदना, भाव, दृष्टी आदि अभी में आम जन का नेतृत्त्व करते हुए दिखाई पड़ती है। समकालीन कविता अपने परिवेश में आत्मगत

न होकर बाह्य जगत को आत्मसात करती है। एक तरह से उसका झुकाव जनपक्षधरता की ओर है। यही कारण है कि कवियों में समाज के विरोधी तत्त्वों के प्रति प्रतिकार का स्वर सुनाई पड़ता है। जब हम अपनी सदी की ओर कई प्रश्नों, आशंकाओं और संभावनाओं से देख रहे हैं तो निश्चित तौर पर समाज से हमारी उम्मीदें बढ़ जाती है। समकलीन कविता ने सामाजिक बोध को समय की मांग के अनुरूप मनुष्य का उसके दायित्त्वों के प्रति बोध कराया है। समकालीन हिंदी कविता का परिदृश्य 'देखा है' की जगह एक शामिल आदमी की कविता है इसमें 'मैं' की जगह 'हम' की उपस्थिति है। और अंत में कवि त्रिलोचन के शब्दों में 'हिंदी कविता उनकी कविता है जिनकी साँसों में आराम नहीं था।'

संदर्भ ग्रंथ

1. गोबिन्द प्रसाद, (2015), कविता के सम्मुख, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ -13
2. सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (2017), आधुनिक भारतीय कविता संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली पृष्ठ-184
3. राजेश जोशी, (2004), एक कवि की नोट बुक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 202
4. परमानन्द श्रीवास्तव, (2015), कविता का अर्थात, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 46
5. परमानन्द श्रीवास्तव, (2015), कविता का अर्थात, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-40
6. वहीं, पृष्ठ 208
7. (सं.) अन्विता अब्बी, (2010), उर्वर प्रदेश, राजकमल प्रकाशन, संस्करण, नई दिल्ली, पृष्ठ- 190
8. (सं.) पी. रवि, (2011), कविता का वर्तमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 232
9. (सं.) डॉ. एन. सिंह, दर्द के दस्तावेज, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-42
10. कँवल भारती, (2012), दलित कविता का संघर्ष, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 172-173
11. सं. रमणिका गुप्ता, (2015), कलम को तीर होने दो, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-65
12. वहीं, पृष्ठ-119
13. सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (2017), आधुनिक भारतीय कविता संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली पृष्ठ-93